# श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान

## *महाशिवरात्रि*

## ईशा सरदेसाई द्वारा लिखित

### समापन-विचार

*इस समापन-लेख की प्रस्तावना के रूप में, मैं आपसे कहना चाहूँगी कि, जी हाँ, यह लेख काफ़ी लम्बा है। और आप इसे एक ही बार में पूरा पढ़ें या [अंग्रेज़ी में सुनें], जी नहीं, ऐसी मैं आपसे अपेक्षा नहीं रखती। ये 'समापन-विचार' आपके साथ साझा करने का हेतु, आपसे और ज़्यादा मेहनत कराना नहीं है [यक़ीन मानिए!]। मेरी ऐसी आशा है कि आप इसे आनन्द के लिए पढ़ें—कि इसे पढ़ने में आपको मज़ा आए, शायद इससे आपमें एकाध नई कल्पना या विचार कौंध जाए, और इससे आपको सिद्धयोग पथ पर हुए अपने अनुभव याद आ जाएँ।*

मैं अकसर अपने आपको यह सोचते हुए पाती हूँ कि जब मैं श्रीगुरुमाई के साथ सिद्धयोग सत्संग में भाग लूँ तो मैं उस सत्संग में हमेशा के लिए बनी रहूँ। निश्चित ही, गुरुमाई जी के सान्निध्य में सदा के लिए रहना तो मेरे लिए बेहद ख़ुशी की बात होगी! और फिर, जगमगाते नीलमण्डप यानी सिद्धयोग वैश्विक हॉल का जादू भी तो है। यह प्रशस्त है और संरक्षण देने वाला भी है और साथ ही विराट और नितान्त जाना-पहचाना भी है। यह सबको *एक-साथ जोड़* भी देता है—मुझे यह बात बहुत अच्छी लगती है कि हम सब सिद्धयोगी और नए साधक इसकी व्यापक छत्रछाया तले एकत्र होते हैं, ताकि हम अपनी श्रीगुरु के सान्निध्य में रह सकें और हमें उनके दर्शन व सिखावनियाँ प्राप्त हो सकें।

आपने अनुमान कर ही लिया होगा कि मैं 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' की इस शृंखला का समापन करने की तैयारी कर रही हूँ जिसका केन्द्रण रहा है, १५ फ़रवरी, २०२६ को हुए 'मांगल्य को बढ़ाओ, महाशिवरात्रि का उत्सव मनाओ' शीर्षक सत्संग से, श्रीगुरुमाई की सिखावनियाँ। मैं कहना चाहती हूँ कि मुझे आप सभी के प्रति अत्यन्त कृतज्ञता का अनुभव हो रहा है। श्रीगुरुमाई की सिखावनियों पर मेरा चिन्तन-मनन पढ़ने के लिए और अंग्रेज़ी में उसे सुनने के लिए आपको धन्यवाद। मैंने जो दृष्टिकोण साझा किए, उन पर ध्यान देकर विचार करने के लिए धन्यवाद। और अपनी समझ साझा करने के लिए धन्यवाद। आपकी ग्रहणशीलता, आपका उत्साह, योगदान करने हेतु आपके खुलेपन के कारण और साथ ही सिद्धयोग साधना के प्रति आपकी गहन वचनबद्धता के कारण, मेरा यह अनुभव रहा है कि हम सब वस्तुतः एक अनवरत सत्संग में हैं।

मैंने पहले भी बताया है कि मैं 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' से सम्बन्धित आप सभी के विचार पढ़ती हूँ। यह बात अब भी सच है! आपके विचारों के बारे में जो अनेक चीज़ें मुझे अच्छी लगती हैं, उनमें से एक यह है कि आपकी अभिव्यक्तियों में कितनी विविधता है। प्रत्येक भाग के अन्त में मैंने जो प्रश्न पूछे हैं, आपने बड़ी उदारता से उनके उत्तर दिए हैं। और इससे जुड़ी साधना की जो अनुभूतियाँ व अन्तर-दृष्टियाँ आपको मिली हैं, उन्हें भी आपने साझा किया है। और आपमें से अनेक लोगों ने अपने वे प्रसंग भी साझा किए हैं जब आपको गुरुमाई जी से इसी तरह की सिखावनियाँ प्राप्त हुई थीं, जिनमें से कुछ तो दशकों पहले प्राप्त हुई होंगी। मैं बता नहीं सकती कि यह कितनी *अद्भुत* बात है। यह मेरे लिए बड़े ही सम्मान व गौरव की बात है कि मुझे ऐसे निष्ठावान सिद्धयोगियों की संगति प्राप्त है।

मुझे लगता है कि यह कहना ठीक ही होगा कि हर पीढ़ी के लोगों को अपने से पहले के समय के बारे में एक तरह की उत्कण्ठा, अतीत की उन यादों को जानने की ललक महसूस होती है जिन्हें वे स्वयं न जी सके हों। हमें लग सकता है, "काश उस समय मैं भी होता!" या हम सोच सकते हैं, "काश, वह चीज़ इस समय हो रही होती!" सिद्धयोग पथ पर अतीत में जो भी प्रसंग होते रहे हैं, जब उनकी बात आती है तो उनके बारे में मेरे मन में यह विचार, यह ललक ज़रूर रही है। मैं इसी पथ का अनुसरण करते हुए बड़ी हुई हूँ, फिर भी ऐसा बहुत कुछ है जो मेरे समय से पहले घट चुका है। गुरुमाई जी के साथ हुए कितने ही सत्संग, शक्तिपात ध्यान-शिविर, कोर्स और रिट्रीट। गुरुमाई जी की विश्वभर में की गईं सभी टीचिंग्स् विज़िट यानी शिक्षण-यात्राएँ।

आपने इतने उदार हृदय से जो वृत्तान्त साझा किए हैं, उन्हें पढ़कर ऐसा लगता है कि *उस समय में मौजूद होने की,* लम्बे समय से मन में पल रही मेरी ख़्वाहिश अब पूरी हो रही है। भूतकाल और वर्तमान काल के अनुभवों की चर्चा करते हुए, हम इन दोनों कालों को जोड़ रहे हैं और उनमें वह सूत्र देख रहे हैं जो इन्हें जोड़े रहता है, और वह है, हमारी श्रीगुरु का समयातीत ज्ञान। मैं भगवान शिव की कल्पना करती हूँ जिन्हें 'गंगाधर' भी कहा जाता है क्योंकि गंगा नदी उनकी जटाओं से निकलकर ही बहती है। पिछले एक महीने से मैं भगवान शिव का बहुत चिन्तन कर रही हूँ कि वे आत्मा का साक्षात् रूप हैं, और यह कि ईश्वर, श्रीगुरु और आत्मा एक ही हैं। मुझे एक विशेष भाव, एक विशिष्ट सारतत्त्व महसूस होता है जो भगवान शिव पर मेरे चिन्तन से जुड़ा है—और जब मैं आपके विचार व चिन्तन-मनन पढ़ती हूँ, तब मुझे उसी सारतत्त्व की अनुभूति होती है, मानो वह स्वयं भगवान के ही शीर्ष के स्थान से नीचे आकर, हमारी ओर प्रवाहित हो गया हो।

आभार व्यक्त करने के इस भाव के साथ, मैं उन सभी लोगों को भी धन्यवाद देना चाहती हूँ जिनसे मैंने 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' के लेख लिखते समय विचार-विमर्श व चर्चाएँ कीं। आपने ग़ौर

किया होगा कि मैं अपने लेखन में विविध स्त्रोतों से विषय-वस्तु का उपयोग करना पसन्द करती हूँ। उदाहरण के लिए, इसमें शामिल हैं, ऐतिहासिक जानकारियाँ, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक शोधकार्य तथा भारत के शास्त्रों से श्लोक और व्याख्याएँ। मेरी हमेशा यही इच्छा रहती है कि मैं जो जानकारी प्रस्तुत करूँ, वह यथासम्भव सही व सटीक हो। और मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि मैं ऐसे सिद्धयोगियों से बातचीत कर सकती हूँ जो इन क्षेत्रों के विशेषज्ञ हैं और जो मेरी समझ को जाँच-परखकर इसे निखारते हैं। इसमें मुझे उनका अमूल्य सम्बल मिला है। इसका फल यह हुआ है कि अपने इस चिन्तन-मनन में, मैं ज्ञान की और अधिक गहराई ला पाई हूँ।

हालाँकि इस शोधकार्य ने इन लेखों को गहराई प्रदान की है, फिर भी, मुझे लगता है कि महाशिवरात्रि सत्संग से गुरुमाई जी की सिखावनियों का हम जितना अन्वेषण कर सकते हैं, उसकी मैं केवल ऊपरी सतह को ही छू पाई हूँ। और मेरा दृष्टिकोण इतना ही है। यह मेरा है। मेरी साधना व मेरे जीवन के अनुभव और इसके परिणामस्वरूप जो भी समझ मुझे मिली है, वही मेरे लेखन व दृष्टिकोण का आधार है। जैसा कि आपके अनुभवों व आपकी अभिव्यक्तियों से स्पष्ट है, हम अनगिनत तरीक़ों से, असंख्य दृष्टिकोणों से चिन्तन-मनन कर सकते हैं, और उन सभी पर खोज करना उचित ही होगा, यहाँ तक कि उन पहलुओं पर भी चिन्तन-मनन किया जा सकता है जिन्हें हम यह सोचकर अस्वीकार कर देते हैं कि वे मूल विषय से हटकर हैं।

मेरे लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि मैं यह स्पष्ट करूँ और इस बात पर ज़ोर दूँ कि जो विचार मैं व्यक्त करती रही हूँ वे तो एक आरम्भ-बिन्दु हैं, न कि किसी प्रकार का निश्चित निष्कर्ष। परन्तु, यदि मेरे विचार आपके लिए उपयोगी रहे हों तो मैं आपके लिए थोड़ा और प्रस्तुत करना चाहूँगी। मकर संक्रान्ति पर हुए सत्संग से गुरुमाई जी की सिखावनियों पर लिखे 'समापन-विचार' में मैंने समझाया था कि मैंने गुरुमाई जी से सीखा है कि स्मृतिसहायक शब्द, किसी चीज़ को सीखने व उसका अध्ययन करने के लिए कितने सहायक होते हैं—ख़ासकर Acronym [ऐक्रोनिम] जिन्हें *संक्षेपाक्षर या संक्षिप्त रूप या लघु रूप या परिवर्णी शब्द* कहा जा सकता है। आपमें से अनेक लोगों ने मुझे बताया कि मकर संक्रान्ति पर मैंने जिन संक्षेपाक्षर या लघुरूप शब्दों की रचना की थी, उनसे आपको उस सत्संग की सिखावनियों को याद रखने में मदद मिली—आपकी अपनी चिन्तन-प्रक्रिया को सम्बल मिला और आपको यह प्रेरणा भी मिली कि आप स्वयं अपने लघुरूप शब्दों की रचना करें।

इसी बात को ध्यान में रखते हुए मैंने सोचा कि महाशिवरात्रि सत्संग से गुरुमाई जी की सिखावनियों के लिए भी मैं कुछ लुघुरूप शब्द बनाऊँ। यहाँ वे लघुरूप शब्द दिए गए हैं और साथ ही मेरे चिन्तन-मनन का पुनरावलोकन भी है—और, क्योंकि मैं अपने आपको रोक नहीं पा रही हूँ, इसलिए मैंने अपने कुछ और चिन्तन-बिन्दु भी यहाँ शामिल किए हैं।

## Mantra Always Heals And Liberates (MAHAL)
## मन्त्र हमेशा आरोग्य प्रदान करता है, उपशमन करता है और मुक्ति देता है [महल]

[**M**antra **A**lways **H**eals **A**nd **L**iberates—इन शब्दों का अर्थ है, 'मन्त्र हमेशा आरोग्य प्रदान करता है, उपशमन करता है और मुक्ति देता है' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है MAHAL, वह है, 'महल'।]

'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान : महाशिवरात्रि' के पहले भाग में मैंने 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र पर गुरुमाई जी की सिखावनियों पर चिन्तन किया। मेरा लेख ख़ास तौर पर इस बारे में था कि गुरुमाई जी ने कहा कि मन्त्र का अमृतरस अत्यन्त शीतल करने वाला होता है—विशेषकर तब जब संसार की अग्नि प्रचण्ड हो। मैंने उन अनगिनत अवसरों में से कुछ की स्मृतियों के विषय में लिखा जब गुरुमाई जी ने सत्संग किए हैं और 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र गाने हेतु हम सभी को मार्गदर्शित किया है, ताकि हम मन्त्र की आरोग्यदायिनी, उपशमकारी व संरक्षण प्रदान करने की सामर्थ्य का आवाहन कर सकें।

जब मैंने इस सिखावनी पर और अधिक चिन्तन-मनन किया तो कैलास पर्वत पर विराजमान भगवान शिव की छवि पुनः मेरे मन में उभरी। अपने शोध और लेखन के दौरान मैंने जाना कि भगवान शिव का एक नाम है, 'गिरित्र' अर्थात् 'वे जो कैलास पर्वत पर निवास करते हैं और अपने भक्तों की रक्षा करते हैं'। यह नाम, यह विचार मुझे दिलासा देता है कि ऊपर बैठे भगवान शिव हम पर अपनी कृपादृष्टि बनाए हुए हैं, हमारी देखभाल कर रहे हैं, और जो भी उनकी शरण लेता है, उसे अपना संरक्षण प्रदान कर रहे हैं। जब हम मन्त्र गाते हैं तो हम भगवान के इसी पक्ष का आवाहन कर रहे होते हैं। हम विनम्रता से उनसे प्रार्थना कर रहे होते हैं कि वे हमें व हमारे संसार को अपना संरक्षण प्रदान करें।

जब मैं विचार कर रही थी कि इस विषय में गुरुमाई जी की सिखावनियों के लिए कौन-सा संक्षेपाक्षर या लघुरूप शब्द उपयुक्त होगा, तब मैं चाहती थी कि वह ऐसा शब्द हो जो भौतिक-स्थान का भाव जगाए, और विशेष रूप से ऐसा स्थान जो सुरक्षित हो, जिस पर किसी का स्वामित्व हो और जहाँ उनका आश्रय व संरक्षण मिल सके। हिन्दी शब्द 'महल' ऐसे ही विशाल व शानदार निवास-स्थान को दर्शाता है। इसमें एक विशेष भव्यता का भाव है, और निश्चित तौर पर इसमें आश्रय या शरणस्थल होने का भाव भी निहित है क्योंकि यह एक भौतिक संरचना है जिसमें लोग रहते हैं या रहे हैं। यह कल्पना कितनी प्यारी है, है न?—यह कल्पना करना कि जब हम मन्त्र गाते हैं तो हम भगवान के *महल* में बैठे हैं। हम कृपा से घिरे हुए हैं, भगवान के व श्रीगुरु के आश्रय में सुरक्षित हैं।

## Calling on and Accepting the Lord's Love (CALL)
## भगवान के प्रेम का आवाहन करना और उसे स्वीकार करना [पुकारना]

[Calling on and Accepting the Lord's Love—इन शब्दों का अर्थ है, 'भगवान के प्रेम का आवाहन करना और उसे स्वीकार करना' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है CALL, उसका अर्थ है, 'पुकारना'।]

अपने लेखों के दूसरे भाग में, गुरुमाई जी की यह सिखावनी मेरे केन्द्रण का विषय थी, 'भगवान शिव को अपना नाम प्रिय है'। मैंने लिखा कि इस सिखावनी के पीछे जो सिद्धान्त है, उसे मैंने किस प्रकार समझा—यानी, यह कैसे हो सकता है कि यदि कोई व्यक्ति भगवान के नाम का केवल जप ही करे तो भगवान *किसी की भी* सुनते हैं और उत्तर भी देते हैं, चाहे याचना करने वाला कोई भी क्यों न हो, और उसने कुछ भी क्यों न किया हो। मुझे समझ में आया कि इसका सम्बन्ध, अपने भक्तों के लिए भगवान की करुणा और इस करुणा का जो *स्वरूप* है, उससे है।

इस भाग को लिखने के कुछ ही समय बाद मैं एक सह-सिद्धयोगी से बात कर रही थी जो मेरी सलाहकार भी हैं। उन्होंने इस बात के सार को बहुत ही स्पष्टता से व संक्षेप में व्यक्त किया। उन्होंने कहा, "हाँ, बिलकुल। भगवान निस्सन्देह चाहते हैं कि हम उनका नाम जपें। जब हम उन्हें पुकारते हैं, तब हम स्वयं अपनी मूल आत्मा का आवाहन कर रहे होते हैं। हम जो हैं, उसके हम उतने ही निकट आ रहे होते हैं।"

ईश्वर, श्रीगुरु और आत्मा एक ही हैं। इस सत्य का ज्ञान हम सिद्धयोग पथ पर प्राप्त करते हैं। अपनी श्रीगुरु की कृपा से और अपने दृढ़ प्रयत्नों से हम इस सत्य की अनुभूति करते हैं। मुझे यह लघुरूप पसन्द है "CALL" जिसका अर्थ है 'पुकारना' क्योंकि मुझे लगता है कि यह सिद्धयोग साधना को स्पष्ट रूप से दर्शाता है; दूसरे शब्दों में कहें तो इस लघुरूप का अर्थ है, 'भगवान के प्रेम का आवाहन करना और उसे स्वीकार करना'। हम भगवान को पुकारते हैं, उनका आवाहन करते हैं और वे उत्तर *ज़रूर* देंगे। किन्तु, उस उत्तर का हम क्या करते हैं? वह उत्तर जिस रूप में हमें मिलता है, क्या हम उसी रूप में उसे स्वीकारते हैं? क्या हम उसे अपनी सत्ता में आत्मसात् करते हैं? हम जहाँ हैं, वहीं हमसे मिलने के लिए क्या हम अपने भगवान के प्रति, अपनी श्रीगुरु के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं? और इस प्रक्रिया में हमें स्वयं के बारे में क्या समझ में आता है?

हाल ही में, मैं भगवान शिव की स्तुति में रचित विभिन्न सहस्रनामों के विषय में सोचती रही हूँ। संस्कृत शब्द 'सहस्रनाम' यानी एक हज़ार नाम, और 'सहस्रनाम' शब्द का प्रयोग विशिष्ट रूप से उस स्तोत्र के लिए किया जाता है जो किसी विशेष देवता की सहस्र नामावली को एक-एक कर बताते

हुए उनकी स्तुति के सन्दर्भ में रचित हो। गुरुमाई जी ने बताया है कि उन्हें सहस्रनाम कितने प्रिय हैं और बीते वर्षों में सिद्धयोग के आश्रमों में इनमें से अनेक स्तोत्रों का पाठ किया गया है।

जब हम किसी विशिष्ट सहस्रनाम का अध्ययन व पाठ करते हैं तो हम उन विशिष्ट देवता की कृपा का आवाहन करते हैं। साथ ही, हम उन देवता के विषय में और भी अधिक बातें समझ सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप हम अपनी आत्मा के विषय में अधिक गहराई से समझ पाते हैं। यह भी एक कारण है कि मैं भगवान शिव के अनेकानेक नामों में से कुछ नाम आपके साथ साझा करती रही हूँ। ये नाम सुन्दर हैं, मनमोहक हैं, प्रायः हमारी चर्चा के विषयों से जुड़े हैं और हमारे अन्तरस्थ भगवान के विभिन्न गुणों को विशेष रूप से दर्शाते हैं।

मुद्दा यह है कि जब बात भगवान शिव के अनेकानेक नामों व उनके गुणों का महिमागान करने की हो तो मैं मुश्किल से इसकी एक झलक ही प्रस्तुत कर पाई हूँ। आख़िरकार, कम से कम एक हज़ार नाम हैं! उनमें से कुछ तो आपको पहले से पता होंगे। उदाहरण के लिए, भगवान शिव 'नटराज' हैं, यानी ब्रह्माण्डीय नृत्य के स्वामी, जो इस अखिल प्रकट जगत के सृजन व विलय के संचालनकर्ता हैं। वे 'महाकाल' हैं, अर्थात् काल के, समय के स्वामी हैं, वे 'मृत्युञ्जय' हैं, यानी वे जिन्हें मृत्यु पर विजय प्राप्त है। वे 'चन्द्रशेखर' हैं, यानी वे जिन्होंने अर्धचन्द्र को अपनी जटाओं में धारण किया है। और वे 'ओंकारेश्वर' हैं, जिसका अर्थ है, आदिनाद ओंकार स्वरूप ईश्वर। वे 'रुद्र' भी हैं, अर्थात् ईश्वर का तेजस्वी व उग्र रूप जो सीमितताओं को नष्ट करता है, यह भगवान शिव का वह रूप है जिसका महिमागान हम श्रीरुद्रम् के पाठ में करते हैं।

आपको यह जानकर अच्छा लगेगा कि 'श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान' की इस लेख-शृंखला के प्रत्येक भाग के अन्त में, अश्रु-बूँद के आकार के क्रिस्टल का जो चित्र आप देखते हैं, वह भगवान के रुद्ररूप का संकेतक है। शिवपुराण जैसे शास्त्रीय ग्रन्थों के अनुसार, रुद्राक्ष-वृक्ष के बीज, जिनका उपयोग हम जप-माला बनाने के लिए करते हैं, मूलतः भगवान रुद्र के अश्रुओं से उत्पन्न हुए थे। भगवान गहन ध्यान में लीन थे तब उनके अश्रु धरती पर गिरे और इन बीजों के रूप में परिवर्तित हो गए। भगवान के अश्रु, अपने भक्तों के लिए उनकी करुणा के व भक्तों के कष्टों को कम करने की उनकी इच्छा के प्रतीक हैं।

<u>**W**onderful, **A**bundant **Y**earning (WAY)</u>
<u>अद्‌भुत, प्रचुर ललक [मार्ग या तरीक़ा]</u>

[**W**onderful, **A**bundant **Y**earning—इन शब्दों का अर्थ है, 'अद्‌भुत, प्रचुर ललक' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है WAY, उसका अर्थ है, 'मार्ग या तरीक़ा'।]

तीसरे भाग में, मैंने गुरुमाई जी द्वारा बताए गए उस प्रसंग के बारे में बताया जिसमें अपने माता-पिता के साथ श्री मुक्तानन्द आश्रम आई हुई एक छोटी बच्ची ने उनसे पूछा कि क्या उन्होंने गुरुमाई जी के साथ 'दर्शन बुक' कर लिए हैं। मैंने लिखा कि इस प्रसंग को लेकर गुरुमाई जी के उत्तर से मैं बहुत द्रवित हो गई, कैसे उन्होंने उस बच्ची के कौतूहलभरे प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा, "क्यों नहीं?" इससे मैं दर्शन के स्वरूप पर गहराई से मनन करने लगी—कि दर्शन की सच्ची अनुभूति हृदय में होती है और यही बात दर्शन के *अभ्यास* को हमारे लिए सदैव सुलभ बना देती है।

फिर भी, मैं एक महत्त्वपूर्ण अन्तर को स्पष्ट करना चाहती हूँ। भले ही श्रीगुरु के दर्शन हमेशा ही हमारे लिए सुलभ हैं, भले ही इसकी भरपूर अनुभूति होती है, फिर भी यह अनुभूति अपने आप नहीं होती। हमें इसके लिए प्रयास करना होता है। निश्चित रूप से उस प्रयास में मधुरता है, पर इससे दर्शन हेतु प्रयास करने का महत्त्व कम नहीं हो जाता, प्रयास करने की आवश्यकता कम नहीं हो जाती।

तो इसके लिए तरीक़ा क्या है? हमें कौन-से विशिष्ट प्रयास करने चाहिए? महाशिवरात्रि से मैं इस बारे में काफ़ी सोचती रही हूँ—कि दर्शन के प्रति हमारे दृष्टिकोण में किस तरह का अनुशासन होना चाहिए, दर्शन की अपनी ललक को हम किस प्रकार पोषित करें, अगर हम इस ललक को लम्बे समय तक अपने अन्दर बनाए रखें तो इसकी तीव्रता कम होने लगती है, दूरी का एहसास धुँधला होने लगता है और यह हमें उसी अनुभूति में लीन कर देती है जिसकी ओर यह हमें खींच रही होती है।

मैंने पहले लिखा है कि हम अपने हृदय में श्रीगुरु की उपस्थिति से जुड़ने के लिए समय तय कर लें, और यदि सम्भव हो तो हम हर दिन इसे करें। यह एक अच्छा और व्यावहारिक क़दम है जो हम उठा सकते हैं। साथ ही, एक सूक्ष्म प्रयास भी है जो हमें करना है, वह है, अपने मन व हृदय को तैयार करना।

मेरा यह अनुभव रहा है कि हमें उन चीज़ों को पाने की गहरी ललक होती है, जिनका हमारे लिए महत्त्व होता है। और अनेक बार ऐसा हो सकता है कि हम उन चीज़ों को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व देते हैं जो दुर्लभ या किसी तरह से कम उपलब्ध लगती हैं। मैं इस बात को यहाँ इसलिए कह रही हूँ क्योंकि हमें इस बात के प्रति सावधान रहना चाहिए कि चूँकि दर्शन हमारे लिए इतने सुलभ हैं, इसलिए हमारे लिए दर्शन का जो महत्त्व है, वह कम न हो जाए। मुझे नहीं लगता कि ऐसा हम जानबूझकर करते हैं। मैं जानती हूँ कि यदि मैं किसी भी सिद्धयोगी से पूछूँ कि उनके लिए दर्शन का क्या महत्त्व है तो वे यही कहेंगे कि दर्शन उनके लिए अनमोल हैं, ये इतने मूल्यवान हैं कि अन्य

किसी भी चीज़ से इनकी तुलना नहीं की जा सकती। परन्तु मेरा यह मानना है कि जब अपना समय व्यतीत करने को लेकर हम अपनी प्राथमिकताओं को तय करते हैं तो हमारे उन निर्णयों में एक मूल्यांकन *अवश्य* निहित होता है और वही मूल्यांकन इस बात का आधार होता है कि हम किन चीज़ों को करना चुनें। अगर हम सोचते हैं कि अमुक चीज़ को हम कल के लिए छोड़ सकते हैं, अगर हमारा मानना है कि जब तक *हम* अमुक चीज़ के लिए तैयार न हों, तब तक वह हमारे लिए इन्तज़ार करेगी तो वह हमारे लिए एक तरह से उन अन्य सभी महत्त्वपूर्ण चीज़ों से कम तत्कालिक महत्त्व रखती है जिन्हें हमने प्राथमिकता दी हो।

किन्तु जब बात दर्शन की हो तो क्या हम सचमुच ऐसा कर सकते हैं? हम में से हर एक के पास इस धरती पर एक सीमित संख्या में दिन हैं। दर्शन की अनुभूति के बिना किसी भी दिन का महत्त्व ही क्या है? अगर हम किसी दिन चिन्तन-मनन न करें, या सदेह श्रीगुरु के शब्दों को याद भी न करें तो उस दिन का मोल ही क्या?

इसी कारण हमें अपनी ललक को ज़िन्दा रखना चाहिए। हमें इसे नई ऊर्जा से भरते रहना चाहिए, और हमें इसे मज़बूत रखना चाहिए। सौभाग्य से, दर्शन के बारे में अनेक अनोखी—और यहाँ तक कि विरोधाभासी भी!—बातों में से एक यह है कि हम दर्शन की अनुभूति जितनी अधिक करते हैं, हमारी ललक उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है। उदाहरण के लिए, इसी वजह से मुझे सिद्धयोग पथ की वेबसाइट पर तस्वीरों की गैलरी देखना इतना पसन्द है, जहाँ हर दिन नई-नई तस्वीरें पोस्ट की जाती हैं—प्रकृति की तस्वीरें, श्री मुक्तानन्द आश्रम के परिसर में दिखने वाले ॐ व हृदय के आकार की तस्वीरें। ये तस्वीरें दिखाती हैं कि श्री मुक्तानन्द आश्रम के परिसर में गुरुमाई जी क्या देख रही हैं। वे हमारे लिए गुरुमाई जी की ओर से एक आमन्त्रण है कि हम भी उनके साथ उस अनुभव में शामिल हों। जब हम इन तस्वीरों को देखते हैं तो हम वही देख रहे होते हैं जो गुरुमाई जी देखती हैं। हम अपने हृदय में श्रीगुरु के सान्निध्य में होने की ओर बढ़ रहे होते हैं। हम दर्शन में भाग ले रहे होते हैं।

<u>**A**ttune **T**o **T**he **U**niversal **N**otes **E**merging (ATTUNE)</u>
<u>ब्रह्माण्ड में उभरते स्वरों के साथ एकलय हों [एकलय हों]</u>

[**A**ttune **T**o **T**he **U**niversal **N**otes **E**merging—इन शब्दों का अर्थ है, 'ब्रह्माण्ड में उभरते स्वरों के साथ एकलय हों' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है ATTUNE, उसका अर्थ है, 'एकलय हों'।]

चौथा भाग परम्परागत सिद्धान्त, "माँगो तो तुम्हें मिलेगा," के विषय पर गुरुमाई जी की सिखावनी पर केन्द्रित था। मैंने इस बात का परीक्षण किया कि भगवान से कुछ 'माँगना'—इसका क्या अर्थ है,

और इसका वर्णन करते हुए मैंने कहा था कि यह भगवान से *प्रार्थना करना* है। और प्रार्थना की शक्ति के बारे में मैंने गुरुमाई जी से जो सीखा है, वह भी मैंने बताया था। वह यह है कि प्रार्थना केवल हमारी इच्छाओं की पूर्ति करने या हमारी ज़रूरतों को पूरा करने का साधन नहीं है। यह भगवान के धाम तक पहुँचने का सेतु हो सकती है।

जब हमारी प्रार्थनाएँ आन्तरिक सम्बन्ध के इस स्थान से उभरती हैं, तब उनकी सार्थकता और सामर्थ्य और भी बढ़ जाती है। तब हम ब्रह्माण्ड के स्पन्द के साथ एकलय हो जाते हैं। जब से मैंने इस विषय में अपना आरम्भिक चिन्तन लिखा है, तब से मैं इस पर मनन करती रही हूँ। मैं विशेष रूप से इस बात पर गहराई से विचार कर रही हूँ कि हमें इसके लिए क्या करना चाहिए कि हम हृदय के प्रज्ञान को सुन सकें और उसे व्यक्त करने हेतु तत्पर रह सकें—चाहे हम उसे स्वयं अपने समक्ष व्यक्त करें या अपने आस-पास के लोगों के समक्ष।

काश मैं ऐसा कह पाती कि मुझे अपने अन्तर-ज्ञान पर हमेशा ही शत-प्रतिशत भरोसा रहा है। ऐसा नहीं रहा है। कभी-कभी ऐसा हुआ है कि जब मुझे अपने अन्दर गहराई से आभास होता है कि अमुक बात सच है, तब मैंने नए-नए तरीक़े खोजकर असाधारण कुशलता से उसे नज़रअन्दाज़ किया है और इसके बदले उस सुहाने भ्रम पर भरोसा कर लिया है जो आसान लगता हो, मन को अच्छा लगता हो, जो मेरे सोचने के उस तरीक़े से मेल खाता हो जिसे मैंने आज़माया हो पर वह हमेशा सच न निकला हो। ऐसा शायद इसलिए है कि सत्य हमेशा ही वैसा नहीं दिखता जैसा हम सोचते हैं कि वह दिखे। इससे हमेशा ही तुरन्त सन्तुष्टि नहीं मिलती। कभी-कभी तो इससे *ज़रा-सी भी* सन्तुष्टि नहीं मिलती, कम से कम हमारी उन इच्छाओं की सन्तुष्टि तो नहीं होती जो शुरू से ही हमारे अन्दर थीं। इसे स्वीकार करने के लिए विनम्रता चाहिए, ऐसा खुलापन चाहिए जिससे हम अपनी पूर्वधारणाओं को और कभी-कभी अपने को सही समझने वाले अड़ियलपन को एक ओर रख सकें, और अगर हम ग़लत हों तो कम से कम अपनी प्रतिष्ठा को बचाने की इच्छा को तो छोड़ सकें।

एक बार गुरुमाई जी ने मुझे एपिक्टेटस महोदय की एक उक्ति बताई थी, जो प्राचीन ग्रीस के एक स्टॉइक दार्शनिक थे। उनकी सलाह है, "ऐसी ज़िद न रखो कि चीज़ें तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही घटें, बल्कि यह चाहो कि वे वैसे घटें जैसे वे वास्तव में घटित होती हैं, तब तुम सुखी रहोगे।[१]

मेरे लिए एपिक्टेटस महोदय के शब्दों का अर्थ यह नहीं है कि हम ग़लत कामों को चुपचाप स्वीकार कर लें। मेरी समझ से यह संवेदनहीनता का समर्थन करना नहीं है, और न ही यह उन उत्तरदयित्वों को त्यागने का समर्थन है जिन्हें इस पृथ्वीग्रह के निवासी होने के नाते हमें निभाना चाहिए। इसके विपरीत, मेरे लिए ये शब्द एक चेतावनी हैं कि हम अपने निजी स्वार्थ के अनुसार अपनी

परिस्थितियों में फेरबदल करने की कोशिश न करें। गुरुमाई जी की सिखावनियों के अध्ययन पर आधारित मेरी अपनी समझ के अनुसार, मेरा मानना है कि दुनिया में हम जो दुष्टता देखते हैं, वह अधिकांश रूप से इसी मानसिकता का परिणाम है, यह उस लालच का परिणाम है जिसे बिना किसी रोक के बढ़ने दिया गया हो।

ऐसे बेलगाम लालच पर अंकुश लगाने का क्या तरीक़ा है, इसका उत्तर तो नहीं है मेरे पास, पर मुझे निश्चित तौर पर ऐसा लगता है कि *और अधिक* लालच इसका समाधान नहीं है। जब हम ख़ुद से जुड़ने की कोशिश करते हैं, जब हम सच में दुनिया की लय के साथ *एक* होने की कोशिश करते हैं, तब हम अधिक जागरूकतापूर्वक क़दम उठा पाते हैं। हम बस वह नहीं करते जो हम करना *चाहते हैं।* हम वह करते हैं जो करना *आवश्यक* हो, जो हितकारी हो, जो उत्थानकारी हो और जो एक-दूसरे की मदद करने वाला हो।

**P**eace **R**equires **A**ssessing **Y**ourself (PRAY)
शान्ति के लिए ख़ुद का मूल्यांकन करना ज़रूरी है [प्रार्थना करें]

[**P**eace **R**equires **A**ssessing **Y**ourself—इन शब्दों का अर्थ है, 'शान्ति के लिए ख़ुद का मूल्यांकन करना ज़रूरी है' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है PRAY, उसका अर्थ है, 'प्रार्थना करें'।]

पाँचवें भाग में मैंने आपको बताया कि गुरुमाई जी ने शान्ति के लिए जो प्रार्थना की वह कितनी उत्कृष्ट है, कितनी विशेष है। जिस शान्ति की हम अपने अन्दर अनुभूति करते हैं और जिस शान्ति को हम अपने संसार में व्यापक रूप में हासिल करना चाहते हैं, उनके बीच जो सम्बन्ध गुरुमाई जी जोड़ रही थीं, उस सम्बन्ध पर मैं चिन्तन कर रही थी। मैंने इस बारे में भी लिखा कि मैंने गुरुमाई जी से सीखा है कि हम प्रार्थनाशील होने के एक अन्तर-भाव को बनाए रखें—दूसरे शब्दों में कहूँ तो हम अपने हृदय को कोमल बनाए रखें और उसे समानुभूति प्रकट करने के लिए खुला व तत्पर रखें। ऐसा करने के लिए हमें ख़ुद के प्रति सौम्यता से सचेत रहना होगा, हम इस संसार के क्रियाकलाप में पूरी तरह से भाग ज़रूर लें और साथ ही इस बात पर भी ध्यान दें कि सतत होने वाले इसके उतार-चढ़ावों से हम लगातार जूझते न रहें।

श्रीगुरुमाई की प्रार्थना और उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ विशिष्ट शब्दों के विषय पर अपने मनन को मैंने कई अनुच्छेदों में व्यक्त किया। परन्तु, मेरे अन्तर में कोई कोना ऐसा है जो अब भी इस बात से हैरान है कि स्वयं गुरुमाई जी ने प्रार्थना की! मैं अत्यन्त द्रवित हूँ। हमारी श्रीगुरु ने *हमारे* लिए, समस्त मानवजाति के लिए प्रार्थना अर्पित की।

कुछ समय पहले, गुरुमाई जी ने मुझे अपने बचपन की एक कहानी सुनाई। वे गुरुदेव सिद्धपीठ के एक बुज़ुर्ग से बात कर रही थीं। गुरुमाई जी ने उन बुज़ुर्ग से पूछा, "क्या भगवान भी प्रार्थना करते हैं?"

उन बुज़ुर्ग ने कहा, "हाँ, भगवान भी प्रार्थना करते हैं।"

फिर गुरुमाई जी ने पूछा, "भगवान *किसके लिए* प्रार्थना करते हैं?"

उन बुज़ुर्ग ने कहा, "भगवान अपने भक्तों के लिए प्रार्थना करते हैं?"

गुरुमाई जी ने मुझे बताया कि गुरु बनने के बाद उन्हें समझ में आया कि इसका क्या अर्थ है। क्योंकि *वे* अपने भक्तों के लिए प्रार्थना करती हैं।

जब से गुरुमाई जी ने मुझे यह कहानी सुनाई है, मैं इसे अपने हृदय में सँजोए हुए हूँ। या फिर शायद यह अपने आप ही मेरे हृदय में बस गई, क्योंकि उसने यह जान लिया कि उसके बसने के लिए यही उसका अपना सहज-स्थान है। मैंने इस कहानी पर आगे विचार किया तो मुझे अपने एक प्रिय अभंग 'श्रीगुरु सारिखा' की एक पंक्ति का स्मरण हो आया। गुरुमाई जी ने यह अभंग अनेक बार सत्संगों में गाया है। इस अभंग में सन्त-कवि ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं : *श्रीगुरु सारिखा असतां पाठीराखा। इतरांचा लेखा कोण करी॥*

इसका अनुवाद है, "श्रीगुरु जैसे परम संरक्षक के होते मैं किसी और से सहायता क्यों चाहूँ?" कुछ वर्ष पूर्व जब श्रीगुरुमाई ने 'मधुर सरप्राइज़' में यह अभंग गाया तो उन्होंने इसका अर्थ विस्तार से समझाया और मराठी शब्द 'पाठी' को विभिन्न तरीक़ों से गाया, जिसका अर्थ है, एक व्यक्ति की पीठ। गुरुमाई जी ने समझाते हुए कहा कि ज्ञानेश्वर महाराज हमें बता रहे हैं कि श्रीगुरु *हमेशा हमारे साथ हैं।*

मुझे यह शब्दरचना बहुत पसन्द हैं। सिद्धयोग पथ पर यह हमारा परम सौभाग्य है कि हमारे पास सदेह श्रीगुरु हैं। हमें अपरिमित आशीर्वाद प्राप्त हैं कि हमारे पास ऐसी श्रीगुरु हैं जो हमें आगे बढ़ने का मार्ग दिखाती हैं और जिनकी कृपा सदैव हमारे साथ है।

<u>**G**oodness **O**utlasts **O**ur **D**espondency (GOOD)</u>
<u>अच्छाई हमारी निराशा से भी कहीं अधिक समय तक टिकी रहती है [अच्छा]</u>

[**G**oodness **O**utlasts **O**ur **D**ependency—इन शब्दों का अर्थ है, 'अच्छाई हमारी निराशा से भी कहीं अधिक समय तक टिकी रहती है' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है GOOD, उसका अर्थ है, 'अच्छा'।]

छठे भाग में हमने अपने जीवन में 'अच्छाई का बीज बोने' के विषय पर गुरुमाई जी द्वारा हमें प्रदान की गई सिखावनी पर अन्वेषण किया। गुरुमाई जी ने कहा कि किसी से कोई भली बात कहना हमेशा ठीक है—और यह कि हमारी बात सुनकर वह किस प्रकार प्रतिक्रिया व्यक्त करेगा, इस कारण वह बात कहने से हमें विमुख नहीं होना चाहिए। इतना ही नहीं, उसके प्रति व्यक्त की गई हमारी सदयता को यदि वह उस समय ग्रहण न भी कर पाए, तब भी हमारे शब्द व्यर्थ नहीं जाएँगे। किसी न किसी समय उसे याद आ जाएगा कि हमने उससे क्या कहा था, कि हमने उसके प्रति अपनी सराहना व्यक्त की थी। हमारे शब्द उसे वह दिलासा देंगे जिसकी उसे आवश्यकता होगी।

जैसा कि मैंने पहले लिखा है कि गुरुमाई जी के शब्दों से मुझे यह समझ में आया कि 'अच्छाई के बीज बोने' का अर्थ बस यही नहीं है कि हम किसी को अच्छा महसूस कराना चाहते हों [हालाँकि यह भी इसका भाग तो है ही], बल्कि इसका अर्थ इससे कहीं अधिक है। हम ऐसा इसलिए भी करते हैं, ताकि हम अपने लिए यह पुष्टि कर लें कि हम कौन हैं, हमारे आदर्श क्या हैं यानी हम किन सिद्धान्तों का समर्थन करते हैं, हम इस दुनिया में क्या निर्माण करना चाहते हैं। ऐसा हम ख़ुद अपने प्रति सम्मानवश और अपनी श्रीगुरु से हमने जो सीखा है, उसके प्रति सम्मानवश करते हैं।

चूँकि मैं महाशिवरात्रि के विषय में इतना कुछ कह रही हूँ, तो मेरे मन में जो उपमा उभरती है, वह चन्द्रमा के प्रकाश से सम्बन्धित है। चाहे हम नज़र उठाकर चन्द्रमा को देखें [या न देखें], चाहे हम उसकी सुन्दरता को सराहें [या न सराहें], चन्द्रमा इससे पूरी तरह अप्रभावित रहता है। वह हर हाल में चमकता रहेगा। उसकी चाँदनी नीचे धरती पर बिखरती रहेगी और वह हमें अपनी उज्ज्वलता में समेटता रहेगा। ज़रा उस भलाई के बारे में सोचें जो वह करता रहता है! चन्द्रमा की कलाओं से ज्वार-भाटा नियन्त्रित रहता है और इसी के फलस्वरूप पृथ्वी के अधिकांश प्राणियों का जीवन-चक्र चलता है, कृमि-कीटकों से लेकर स्तनधारियों, जलीय उभयचरों और यहाँ तक कि परजीवियों तक, सभी का जीवन चन्द्रमा व ज्वार-भाटों के तालमेल से चलता है। जिन जीवों में देखने की क्षमता होती है, वे अपने जीवन-चक्र का यह सन्तुलन बनाए रखने के लिए चन्द्रमा के प्रकाश पर निर्भर होते हैं। शिकार करना, भोजन की तलाश करना, खाना और खिलाना, उड़ना और प्रजनन करना, उनकी ये सभी गतिविधियाँ इस बात पर निर्भर होती हैं कि चन्द्रमा से कितना प्रकाश प्रसरित हो रहा है।

मुझे लगता है कि हम चन्द्रमा से प्रेरणा ले सकते हैं। है न? अपने अन्दर के प्रकाश को, उस प्रकाश को जो श्रीगुरु की कृपा ने जाग्रत किया है, उसे उसके सम्पूर्ण वैभव के साथ हम अपने से बाहर की ओर फैलने क्यों नहीं दे सकते? कितना मुक्तिदायक होगा वह? क्योंकि, हाँ, बिना किसी झिझक या संकोच के, बिना यह चिन्ता किए कि हमारे शब्द या कृत्य किस तरह स्वीकार किए जाएँगे, अपनी अच्छाई सभी तक फैलाना पूर्ण स्वतन्त्रता का कृत्य है।

मैंने भगवान शिव के जिन नामों का उल्लेख किया है उनमें से एक नाम है, 'स्वयम्भू'। संस्कृत भाषा के इस शब्द के दो भाग हैं : 'स्वयं' जिसका अर्थ है 'स्वतः' और 'भू' का अर्थ है, 'उदित होना, उत्पन्न होना, बनना, निर्माण करना'। जो कुछ भी स्वयम्भू है वह स्वजन्मा, स्व-निर्मित है, वह अपने आप प्रकट हुआ है, पूर्णतया स्वतन्त्र है। उसकी उत्पत्ति का कोई स्रोत नहीं है, बल्कि वह स्वयं से ही उत्पन्न हुआ है; उसका अस्तित्व किसी और पर निर्भर नहीं है। आपमें से जो लोग भारत में रहे हों या जिन्होंने भारत की यात्रा की हो, वे जानते हैं कि 'स्वयम्भू' शब्द 'ज्योतिर्लिंगम्' के साथ भी जुड़ा है, क्योंकि ज्योतिर्लिंग सम्पूर्ण भारत में स्थित हैं। इन लिंगों को स्वयम्भू कहा जाता है—दूसरे शब्दों में, ये बिना किसी मनुष्य की सहायता के, प्राकृतिक रूप में पृथ्वी में से प्रकट हुए हैं। [ज्योतिर्लिंग और इसके महत्त्व के विषय में अधिक जानने के लिए मैं आपको आमन्त्रित करती हूँ कि आप सिद्धयोग पथ की वेबसाइट पर इस विषय पर अमी बन्सल द्वारा लिखित सुन्दर व्याख्या को पढ़ें। लिंक : https://www.siddhayoga.org/mahashivaratri/jyotir-linga-column-of-light/]

मैं यह सब इसलिए कह रही हूँ क्योंकि, जैसा कि हम सिद्धयोग पथ पर सीखते हैं, भगवान शिव और हमारी अन्तरात्मा, दोनों एक ही हैं। अतः यदि *भगवान शिव* स्वयम्भू हैं तो हम भी स्वयम्भू हैं, अर्थात् यदि स्वयम्भू से व्यक्त होने वाली संकल्पनाओं से और उससे उत्पन्न होने वाले गुणों से भगवान शिव का घनिष्ठ सम्बन्ध है तो यही बात हमारे बारे में भी सच है। हमारे अन्दर के प्रकाश को, हमारे हृदय की अच्छाई को किसी और के प्रमाण की आवश्यकता नहीं। इसे किसीकी स्वीकृति की मोहर की ज़रूरत नहीं है। यह तो बस है। और अगर हम इन्हें बहने दें तो ये बस बहते रहते हैं।

इतना ही नहीं, इसके बाद जो घटित होता है वह तो व्यावहारिक दृष्टि से अक्षरशः चमत्कारी है, कीमियागरी ही है। मैंने लघुरूप चुना है "GOOD"—**G**oodness **O**utlasts **O**ur **D**espondency [अच्छाई हमारी निराशा से भी कहीं अधिक समय तक टिकी रहती है] क्योंकि इस सिखावनी का अभ्यास करने का मेरा यही अनुभव रहा है। जब हमें दूसरों के लिए सदाशयता महसूस हो रही हो तब स्वयं अपने बारे में बुरा महसूस होना मुश्किल ही है। जब हम अपने अन्दर भगवान के प्रकाश की अनुभूति कर रहे हों और जिनसे हम मिलें, उनमें उसी प्रकाश को प्रतिबिम्बित होता देख रहे हों तो संसार की दशा को लेकर निराश रहना, इस बारे में आशा ही छोड़ देना कठिन होता है। कितनी दिलचस्प बात है, है न? अकसर ऐसा होता है कि जब हम अपनी इस ज़रूरत को छोड़ देते हैं कि हमारा प्रकाश स्वीकार किया जाए, और उसके बदले में हमें कुछ मिले तो हम पाते हैं कि वह प्रकाश ऐसे अनपेक्षित रूपों में चमकता हुआ हमारे पास लौट आता है जिनकी हमने कल्पना भी न की हो।

Shiva Encompasses Everything (SEE)
शिव में सब कुछ समाया हुआ है [देखें]

[Shiva Encompasses Everything—इन शब्दों का अर्थ है, 'शिव में सब कुछ समाया हुआ है' और इन अंग्रेज़ी शब्दों के पहले अक्षरों से जो लघुरूप शब्द बना है SEE, उसका अर्थ है, 'देखें'।]

इन समापन-विचारों से ठीक पहले वाले यानी सातवें भाग में मैंने लिखा था कि गुरुमाई जी ने हमसे "मैं शिव हूँ, शिव सर्वश्रेष्ठ हैं," इस कथन में निहित सत्य की अनुभूति करने के लिए कहा। मैंने इस बारे में लिखा कि भगवान शिव के सन्दर्भ में 'सर्वश्रेष्ठ' शब्द से मुझे क्या समझ में आता है—और भारत के शास्त्र भी मूल रूप से हमें यही बताते हैं कि भगवान शिव ही वह आत्मा हैं जो समस्त सृष्टि में व्याप्त है। जैसाकि शास्त्र कहते हैं और जैसा कि गुरुमाई जी व बाबा मुक्तानन्द ने सिखाया है : "नाशिवं विद्यते क्वचित्"—ऐसा कुछ भी नहीं है जो शिव नहीं है। इसलिए शिव से महान कुछ हो ही नहीं सकता। शिव से बढ़कर, शिव से परे कुछ है ही नहीं। भगवान शिव निस्सन्देह सर्वश्रेष्ठ हैं।

'शिवबोध' शब्द बार-बार मेरे अन्दर उभर रहा है। मूलतः यह शब्द भारत के शास्त्रों में पाया जाता है, और इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि मैंने इस शब्द के बारे में सबसे पहले श्रीगुरुमाई से सीखा। [असल में, सिद्धयोग पथ की वेबसाइट पर तस्वीरों की एक पूरी शृंखला है जो शिवबोध के विभिन्न रूपों को दर्शाती है।] मैंने पाया है कि जब हम कहते हैं, "मैं शिव हूँ, शिव सर्वश्रेष्ठ हैं," तो इस वाक्यांश के उच्चारण द्वारा हम जिस बोध को धारण करने की कोशिश कर रहे हैं, उसे 'शिवबोध' शब्द बिलकुल सटीक रूप से दर्शाता है। हम अपने अन्दर व बाहर शिव यानी परम आत्मा की उपस्थिति का अनुभव करने की कोशिश कर रहे होते है।

यह कोई संयोग नहीं है कि मुझे श्रीगुरुमाई के वर्ष २०२६ के सन्देश के शब्द याद आ रहे हैं, विशेषकर चौथी पंक्ति के शब्द, "अवलोकन करो! अपनी चेतना को प्रबुद्ध करो।" अपनी व्यक्तिगत चेतना का उत्थान करने हेतु, भगवान शिव के बोध अर्थात् शिवभाव से अपनी चेतना को व्याप्त होने देने से बेहतर तरीक़ा और कौन-सा हो सकता है?

मैं समझ सकती हूँ कि यह एक ऐसी चीज़ लग सकती है जिसे कहना आसान होता है, पर करना मुश्किल। आप सोच रहे होंगे, "ईशा, यह सुनने में तो बहुत अच्छा लग रहा है। लेकिन मेरे अपने जीवन में और इस संसार में जो कुछ भी हो रहा है, उसमें मैं भगवान शिव की उपस्थिति का अनुभव कैसे करूँ, कैसे मैं यह अनुभव करूँ है कि इस सबके पीछे ईश्वर की इच्छा है? क्या मुझे उसे अनदेखा करना चाहिए जो मुझे सही नहीं लगता या सरासर ग़लत लगता है?"

इसका सीधा जवाब है, नहीं। जैसाकि मैंने अब तक कई बार कहा है कि मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि सत्य को खोजने का कार्य करना और पहले की किसी भी असत्य बात को स्वीकार करना या उसे माफ़ करना या अनदेखा करना, ये दोनों एक जैसे हैं। मेरे कहने का मतलब कुछ अलग है। सिद्धयोग पथ पर हम जो कर रहे हैं वह है, मांगल्य को बढ़ाना। हम यह चुन सकते हैं कि हम किस पर अपना ध्यान केन्द्रित करें, कि हम अपने जीवन में किस चीज़ को बढ़ने दें। अपने सिर पर नकारात्मकता के बादल मँडराने देने के बजाय, हम भगवान शिव के जैसे बन सकते हैं जिनकी जटाओं में चन्द्रमा सुशोभित है। हम यह स्मरण रख सकते हैं कि हमारा हृदय स्वर्णिम है और हम जहाँ भी जाएँ, वहाँ हम अच्छाई के बीज बो सकते हैं।

मैं बिलकुल समझ सकती हूँ कि इसे करना हमेशा ही आसान नहीं होता। पूरी सम्भावना है कि इसके लिए धैर्य, निरन्तरता, लगन और दृढ़ संकल्प की आवश्यकता होगी। परन्तु मुझे लगता है कि हम इस चुनौती के लिए तैयार हैं। हाँ, ठीक है, शायद मैं जितना आपकी हिम्मत बढ़ाने के लिए ऐसा कह रही हूँ उतना ही *अपने* लिए भी कह रही हूँ। फिर भी, आपका क्या कहना है? इस चुनौती को स्वीकारने के बारे में आपके क्या विचार हैं? हमारी श्रीगुरु हमारे पथ को आलोकित कर रही हैं, मांगल्य को बढ़ाने का हमारा संकल्प हमारे मन में प्रमुखता से है तो क्या आपको नहीं लगता कि हम निश्चित ही प्रगति करेंगे? जैसाकि गुरुमाई जी मेरी [अनेक प्रिय सिखावनियों में से] एक प्रिय सिखावनी में कहती हैं : तुम अपने हृदय को जहाँ भी समर्पित करते हो, तुम वहीं पहुँच जाते हो।[२]

एक बार फिर से आप सभी को धन्यवाद—सचमुच *अनेकानेक* धन्यवाद!—कि आपने समय निकालकर श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान की मेरी इस श्रृंखला को पढ़ा व अंग्रेज़ी में सुना है। अपने परिचय-लेख में मैंने आपको बताया है कि मुझे ऐसा लगता है कि हम यहाँ जो कर रहे हैं वह एक प्रकार का 'डिजिटल साधना सर्कल' है। यह पिछला महीना हमारे बीच एक सुखद वार्तालाप जैसा रहा है, जहाँ हमने सिद्धयोग पथ पर साथ-साथ चलते हुए अपने-अपने विचार और अनुभव साझा किए हैं।

मैं पूरे हृदय से श्रीगुरुमाई के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना चाहती हूँ कि उन्होंने मुझसे यह सेवा करने को कहा। मुझे इससे इतना लाभ हुआ है कि मैं उसे शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती; इतना लाभ हुआ है जो मेरी कल्पना से परे है। ये लाभ अब भी उजागर हो रहे हैं, पर उनमें से कम से कम एक ऐसा है जिसे मैं आपके साथ अभी साझा कर सकती हूँ। जब से मैंने यह सेवा करना आरम्भ किया है तब से मुझे एक के बाद एक, एक के बाद एक, गुरुमाई जी के सपने आते रहे हैं। अनवरत दर्शन। अनवरत सत्संग।

मैं आपको प्रोत्साहित करती हूँ कि आप महाशिवरात्रि के सम्मान में हुए सिद्धयोग सत्संग से श्रीगुरुमाई के वचनों पर ध्यान करते रहें। इस विषय पर मेरे लेखन ने यदि कुछ भी किया है तो मुझे आशा है कि उसने यह दर्शाया होगा कि जब हम अपनी श्रीगुरु के वचनों को हृदय में उतारते हैं तो ज्ञान को खोज पाने, उसे आत्मसात् कर, साकार कर पाने की कोई सीमा नहीं है।

© २०२६ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।

---

[१] *Marcus Aurelius, Meditations; Epictetus, Enchiridion* से अनुवाद रूपान्तरित (Chicago: Henry Regnery Company, १९५६), पृ. १७४।

[२] गुरुमाई चिद्विलासानन्द द्वारा लिखित, ‘अन्तर-शुद्धि के सोपान : दिव्य सद्गुणों का योग’ [चित्शक्ति पब्लिकेशन्स, २०१३], पृ २८ में उद्धृत।